साहित्य प्रेमी श्री भँवरलालजी नाहटा, कलकत्ता
की सेवा में सादर भेट। - अगरचन्द नाहटा
२८-२-५८

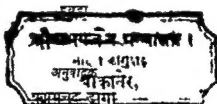
श्री अमोल जैन ग्रन्थमाला पुष्प सं० ७

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

जैन-विज्ञान



लेखक
श्रीयुक्त हरिसत्य भट्टाचार्य
(एम० ए० बी० एल० पी-एच० डी०)


बीकानेर,

अनुवादक

कलकत्ता

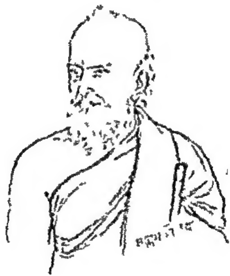


प्रकाशक
श्री जैन श्वेताम्बर मित्र-मण्डल
कलकत्ता

प्रकाशक :
मंत्री,
श्री जैन श्वेताम्बर मित्र मण्डल
कलकत्ता

मुद्रक :—
धन्नालाल बरड़िया
रेफिल आर्ट प्रेस
३१, बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता ७

[illegible] श्री अनुपम विभूति, [illegible] प्रभावक, व्याख्यानवाचस्पति [illegible]
जैनाचार्य श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वरजी (आत्मारामजी) महाराज
व
पट्टधर



विश्ववत्सल, अज्ञानतिमिर तरणि, कलिकाल कल्पतरु सूरि
सार्वभौम, परम शासन प्रभावक, भारत दिवाकर
मरुधरोद्धारक, पंजाब केसरी, जंगम युग प्रधान आचार्य
श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराज।





समर्पण



जिन्होंने राष्ट्र भाषा हिन्दी में साहित्य के प्रकाश को प्रोत्साहन देकर हमारी आत्मा को प्रकाश दिखाया और अपनी अपूर्व काव्य शक्ति द्वारा लोगों को भक्ति मार्ग की ओर आकर्षित किया। जिन्होंने अपने त्याग, संयम, तपस्या के बल पर विद्यालय-मन्दिर-गुरुकुल आदि के स्थापन का उपदेश देकर ज्ञान का प्रचार किया और जिनकी पूर्ण कृपा से मैं साहित्य क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ उन्हीं स्व० गुरुदेव परम पूज्य पंजाब केसरी युग महापुरुष जैनाचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वर जी महाराज की कृपा का यह पुष्प जैन शिक्षा नामक हिन्दी अनुवाद की पुस्तिका के रूप में उन्हीं को सादर समर्पित।

—ऋषभचन्द डागा



[illegible]
[illegible]
[illegible]

AUTHOR'S PREFACE

The Jaina philosaphy occupies a glorious place among the systems of Indian philosophy although it is little studied in Bengal Many years ago, I contributed an Essay, entitled 'Jaina-Katha to a conference of the Bangiya Sahitya Parisad, held at Radhanagar The essay attracted the attrention of philosophical scholars and it was published in the Jaina-Vani

The following pages contain a Hindi translation of the Essay, intended for the reading of the non Bengali people of India The translation is by Sri Rishabhchand Daga and has been read to me *in extenso* by the learned translator Although I am not a Hindi scholar, the translation has appeared to be sonorous and true to the original

If this translation succeed in interesting scholors in studying the Jaina philosophy, both the author and the translator will deem their labour amply rewardsd

1, Kailas Basu Lane
Howrah (West Bengal)
20-2-1958

H Bhattacharya.

प्रकाशकीय

साहित्य राष्ट्र के उत्थान का प्रमुख अंग है, जो जनता के बीच नये नये भावों का विकास करने पूर्ण समर्थ होता है। इसी कारण कई दिनों से हमारी यह भावना थी कि मंडल की ओर से सरल भाषा हिन्दी में जैन धर्म के अलग अलग विषयों की परिचयात्मक पुस्तिकाएँ प्रकाशित कर साहित्य का प्रचार किया जाय जिससे लोगों को जैन धर्म के गम्भीर विषयों के अध्ययन करने की रुचि उत्पन्न हो।

प्रस्तुत पुस्तिका इस दिशा में हमारे उद्देश की पूर्ति का एक अंग है। इस में प्रकाशित "जैन विज्ञान" नामक निबंध को कई वर्ष पूर्व हमारे इलाके के सुप्रसिद्ध बंगाली विद्वान श्री हरिसत्य भट्टाचार्य एम० ए०-बी० एल०, पीएच० डी० ने यहां साहित्य परिषद् गया नगर में पढ़ा था जिसका हिन्दी अनुवाद साहित्य प्रेमी श्री ऋषभचंद डागा ने किया है। जो बड़ा ही रोचक, सरल और आकर्षक है। जिसको बालवृद्ध, शिक्षित-अशिक्षित सभी पढ़कर लाभ उठा सकते हैं।

डागाजी एक कुशल व्यवसायी, उत्साही कार्यकर्ता और सुयोग वक्ता होने के साथ साथ लेखक एवं विचारक भी हैं। इनकी सभी रचनाओं को जैन समाज ने विशेष आदर पूर्वक अपनाया है।

आप वर्षों तक श्री जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स की स्टैंडिंग कमेटी के सदस्य तथा बंगाल प्रांतीय मंत्री रहे हैं। आज भी कान्फ्रेंस एवं भारतीय जैन स्वयं सेवक परिषद् के आजीवन सदस्य तथा "सेवा समाज" साप्ताहिक पत्र बम्बई की सम्पादक सलाहकार समिति के सदस्य हैं।

कलकत्ता की श्री जैन सभा के उपमंत्री, संगीत मंत्री, प्रचार मंत्री पद को सुशोभित कर बड़ी तत्परता के साथ समाज सेवा का कार्य किया है। यों तो प्रारम्भ में जैन सभा को ऊँचा उठाने का समस्त श्रेय आपही को है ऐसा कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। मंडल के पुस्तक विभाग, भाषण विभाग, संगीत विभाग के मंत्री पद को सुशोभित करके भी अपनी योग्यता का परिचय दिया है।

इतना ही नहीं हमारे लिये विशेष गौरव की बात तो यह है कि आप मंडल के विद्यालय और संगीतालय के भूत पूर्व विद्यार्थियों में से एक हैं जिन्होंने सामाजिक, धार्मिक, व्यापारिक क्षेत्र में अपने बल पर सफलता प्राप्त की है।

मंडल के भूतपूर्व विद्यार्थी होने के नाते हम आशा करते हैं कि आप इसी प्रकार भविष्य में भी मंडल के साहित्य प्रचार में

सहयोग देते रहेंगे और मंडल आप के साहित्य को प्रकाशित करने में सदैव तत्पर रहेगा ऐसा हम विश्वास दिलाते हैं।

प्रस्तुत पुस्तिका की एक हजार प्रतियों के प्रकाशन का समस्त खर्च हमारे सहयोगी कर्मठ कार्यकर्ता श्री हीरालाल लूणियां की सद् प्रेरणा से श्रीयुक्त चम्पालाल गोलछा फर्म श्री सुन्दरलाल गोलछा मनोहर दास कटरा, कलकत्ता द्वारा प्राप्त हुई है। अतएव प्रेरक तथा दाता का हृदय से आभार मानते हैं।

अंत में पाठक-पाठिकाओं से आशा की जाती है कि इस पुस्तिका द्वारा लाभ प्राप्त कर हमारे इस प्रयत्न को सफल करेंगे यही अभिलाषा है।

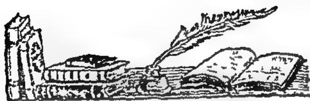
स्थान —
श्री मगनमल पारख
की आफिस
१७, नूरमल लोहिया लेन
कलकत्ता

हुलीचन्द बैद
मंत्री
श्री जैन श्वेताम्बर मित्र-मण्डल
कलकत्ता



श्री ऋषभचन्द डागा

कलकत्ता



दो शब्द

विज्ञान ज्यों-ज्यों विकास की ओर बढ़ता जा रहा है, त्यों-त्यों जैन धर्म के मान्य विषयों का प्रतिपादन होता जा रहा है। इन वर्षों में आणविक बातें चल ही रही थी कि राकेटों और स्पूतनिकों की बातें सामने आने लगी तभी तो आज के युग को विज्ञान का युग कहा जाता है।

आज के वैज्ञानिकों ने निर्माण करने के बदले ध्वंस करने की सामग्री अधिक दी है। आणविक युद्धों की ज्वाला से समस्त संसार अशान्त और व्याकुल हो उठा है। चारों तरफ से एक ही आवाज आ रही है कि इन प्रलयकारी साधनों को बन्द किया जाय और जनहित कार्यों में उपयोग हो सके, ऐसे ही साधन बढ़ाये जाय, वरना सभ्यता का नाश हो जायगा, क्योंकि

हमारे उन ज्ञानियों और मनीषियों के ज्ञान—विज्ञान की चरम सीमा को समझने और पालन करने में आज के वैज्ञानिक सर्वथा असमर्थ सिद्ध होते हैं।

इस सूक्ष्म रहस्य को हजारों वर्ष पूर्व हमारे भारतीय दार्शनिक, गम्भीर तत्वज्ञ जैन ऋषि-मुनियों ने समझ लिया था और वे अपने अनुभव ज्ञान का उपयोग अति विवेकपूर्वक किया करते थे। तथा सुयोग्य पात्र मिले बिना उस अनुभव ज्ञान को अपने साथ लेकर जाने में ही श्रेय मानते थे। जिससे उस विद्या का अज्ञानतावश कोई दुरुपयोग न कर बैठे। यों तो अपनी साधना-तपश्चर्या के बल पर लोकोत्तर स्थिति प्राप्त की उसी सिद्ध, तीर्थंकर, वीतराग भगवान के वचन जो कभी मिथ्या नहीं होते उसी अमृत वाणी को आगमों के रूप में पूज्य गणधरों ने गुंथन किया, और बाद में भी जैनाचार्यों ने अपने ज्ञान का उपयोग अपने आनेवाली पीढ़ी के लिये साहित्य रूपी खजाने को लिखकर छोड़ने में किया जिसका आज भी विशाल संग्रह जैसलमेर, बीकानेर, पाटन, बड़ौदा, लिम्बडी, खम्भात, अहमदाबाद आदि-आदि शहरों में पाया जाता है उसमें वर्णित अनेक विषयों में से जीव-अजीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, प्राण विद्या, आत्म-विद्या, चेतना, उपयोग, दर्शन, ज्ञान, मति, अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा, स्मृति, संज्ञा, चिंता, अभिनिबोध, श्रुतज्ञान, लब्धि, भावना, उपयोग, नय, नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ,

एवंभूत, स्याद्वाद, द्रव्य, द्रव्य-गुण-पर्याय, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान, केवल ज्ञान, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, मोक्ष मार्ग, सम्यक् दर्शन, सम्यग् ज्ञान, सम्यक्चारित्र आदि-आदि विषयों का विस्तृत वर्णन प्राचीन शास्त्र आचराङ्ग, जीवाभिगम, भगवती सूत्र आदि में पाया जाता है। तथा उक्त विषयों की संक्षिप्त रूप रेखा का परिचय सर्व दर्शनों तथा आज के वैज्ञानिकों के साथ तुलनात्मक समीक्षा कर बंगाल के सुप्रसिद्ध विद्वान श्रीयुत हरिसत्य भट्टाचार्य एम० ए० बी० एल० पीएच० डी०, ने कई वर्ष पूर्व राधानगर बंग साहित्य-परिषद् में निबन्ध के रूप में पढ़ा था, जिसका नाम "जैन विज्ञान" रखा गया है वह सर्वथा उपयुक्त है। आप के तल स्पर्शी ज्ञान तथा विचार करने की अद्भुत शक्तिके कारण ही आपके उक्त निबन्ध की सर्वत्र प्रशंसा हुई और यही कारण है कि इस निबन्ध का हिन्दी अनुवाद पाठकों के समक्ष उपस्थित करने का सौभाग्य प्राप्त कर रहा हूँ। तथा आपने प्रस्तुत पुस्तिका पर अपना अभिप्राय लिखकर जो उदारता का परिचय दिया है। अतएव आपका भी आभार माने बिना कैसे रह सकता हूँ।

भारत के उपराष्ट्रपति श्रद्धेय सर्वपल्ली श्री राधाकृष्णन् आदि विद्वानों द्वारा अनुमोदित आपके लिखित जैन थीसिस पर ही कलकत्ता विश्व विद्यालय से जो आपको पीएच० डी० का पद पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उसका हमें गौरव है।

आपके अनेक प्रकाशित-अप्रकाशित निबन्धों को प्रकाश में लाने का शिघ्र ही प्रयत्न किया जायगा जिससे साधारण जनता उसका सदुपयोग कर सके।

स्वर्गीय गुरुदेव परम पूज्य पंजाब केशरी युग महापुरुष जैनाचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज का हृदय से आभार मानता हूँ जिनकी ही पूर्ण कृपा से मैं साहित्य क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ तथा उन्हीं के पट्टधर शान्त मूर्ति, परम गुरु भक्त जैनाचार्य श्रीमद् विजय समुद्र सूरीश्वरजी महाराज का आभार मानता हूँ जो स्वर्गीय गुरुदेव की भांति साहित्य प्रवृति के लिये सदैव प्रेरणा देते रहते हैं।

जैन विज्ञान के गुजराती अनुवादक श्री सुशील तथा उक्त पुस्तक के प्रकाशक का भी आभार मानता हूँ जिनके गुजराती अनुवाद का पूरा पूरा सहारा लिया है।

हिन्दी अनुवाद करने के पश्चात विद्वद्वर्य पू० मुनिश्री जनक विजय जी महाराज, पंडितश्री बी० आर० सी० जैन, साहित्य प्रेमी श्री भँवरलाल नाहटा तथा श्री इन्द्रचंद नाहटा को इस अनुवाद के सुनाने का सुअवसर प्राप्त हुआ है जिन्होंने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर मेरा उत्साह बढाया। अतएव उन सभी का भी आभारी हूँ।

श्री जैन श्वे० मित्र मण्डल के मंत्री श्री दुलीचन्द बैद तथा कर्मठ कार्यकर्ता श्री हिरालाल लूणिया ने तो अनुवाद सुनते ही मंडल की ओर से प्रकाशित करने का तत्काल ही निर्णय कर

मेरे उत्साह में वृद्धि की अतएव आप दोनों की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता।

अंत में उन पाठकों को भी धन्यवाद देना कर्तव्य समझता हूं। जिन्होंने मेरे द्वारा लिखित "आदर्श प्रवर्तनी" तथा "साहित्य सम्राट और अद्‌भुतकवि" एवं युग प्रवर श्रीमद् विजय धर्म सूरि जीवनरेखा नामक पुस्तकें और श्री सूरिजय अष्ट प्रकारी पूजा, श्री दादा प्रभावक सूरि अष्ट प्रकारी पूजा, श्री जगद्‌गुरु अष्टप्रकारी पूजा आदि पूजाओं को विशेष रूप से अपनाकर धर्म प्रेम का परिचय दिया है। इसीलिये प्रस्तुत पुस्तिका लेकर उपस्थित होने का साहस कर रहा हूं।

अंत में आशा करता हूं कि पूर्व रचनाओं की भांति समाज इस पुस्तिका को पढ़कर जैन सिद्धान्तों के अध्ययन की ओर रुचि उत्पन्न करेगी तो मेरा यह प्रयास सार्थक होगा।

स्थान —
२६।१ सर हरिराम गोयनका स्ट्रीट,
कलकत्ता
ता० २१-७-५८

सत्पुरुष चरणेच्छु
ऋषभचंद डागा

लेखकीय अंग्रेजी का हिन्दी अनुवाद

बगाल मे जैन दर्शन का अभ्यास अति कम होने पर भी भारतीय दर्शनों मे जैन दर्शन को अति गौरवमय स्थान प्राप्त है।

कई वर्ष पूर्व राधानगर बग-साहित्य परिषद् का जो अधिवेशन हुआ था उसमे मुझे "जैन कथा" नामक निबन्ध पढने का सुअवसर प्राप्त हुआ। जिसको सुनकर उपस्थित विद्वानों के समूह का मन बडा ही आकर्षित हुआ। तत्पश्चात उक्त निबध जिनवाणी नामक (बगला) पत्रिका मे प्रकाशित हुआ उसी का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत पुस्तिका मे किया गया है।

यह अनुवाद भारतवर्ष के अबगाली लोगों के पढने के लिये ही विद्वद्वर्य श्री ऋषभचन्द डागा ने किया है और इसको मेरे सन्मुख सम्पूर्ण पढकर सुनाया है।

मै हिन्दी का विद्वान न होने पर भी इतना तो दावे के साथ कह सकता हू कि यह अनुवाद बडाही मधुर और बिलकुल सत्य हुआ है।

आशा करता हूँ कि इस अनुवाद द्वारा अभ्यासी लोग जैन दर्शन के अभ्यास मे दिलचस्पी लेगे तो लेखक और अनुवादक का परिश्रम सार्थक समझा जायगा।

१, कैलाश बसु लेन
हवडा (पश्चिमी बंगाल) } —हरिसत्य भट्टाचार्य
[illegible]

जैन-विज्ञान

(हिन्दी अनुवाद)

जैन विज्ञान

जैन सम्प्रदाय विशाल भारतीय जाति का एक अंश है। भारतवर्ष की जो प्राचीन संस्कृति, पुरातत्व शास्त्रियों को आश्चर्य चकित कर रही है उस संस्कृति का सम्पूर्ण और सच्चा इतिहास ज्ञात करना हो तो जैन सम्प्रदाय के अभ्यास बिना नहीं हो सकता। अथवा जैन सम्प्रदाय के विवरण बिना अपूर्ण रह जाय।

कई लोग भूल से ऐसा मान लेते हैं कि महावीर स्वामी ने ही जैन धर्म प्रारम्भ किया था, अर्थात् ईस्वी सन् से छः सात सौ वर्ष पूर्व ही जैन धर्म का जन्म हुआ था। परन्तु डॉ० हर्मन जैकोबी (जर्मन) जैसे समर्थ विद्वानों ने इस मिथ्या भ्रम को दूर करने का खूब प्रयत्न किया और इसमें वे अधिकतर सफल भी हुए।

जैन धर्म इस संसार का प्राचीन से प्राचीन धर्म है। जिस ऋषभदेव को भागवतानुसार वैष्णव का मुख्य अवतार मानते हैं वही जैन सम्प्रदाय का आदीश्वर, वर्तमान चौवीसी का प्रथम तीर्थंकर है।

पुण्य क्षेत्र भारतवर्ष जो पुरुष श्रेष्ठ के नाम से आज भी प्रसिद्ध है, जिस भारतवर्ष के नाम से प्रत्येक भारतवासी अभिमान करते हैं उस चक्रवर्ती सम्राट भरत के प्रति ब्राह्मण सम्प्रदाय और जैन सम्प्रदाय भी अपनी भक्तिमय श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

जिस रघुपति के चरित्र वर्णन से ब्राह्मण साहित्य गूंज रहा है उस रामचन्द्र को भी जैनों ने अपनी समाज में उचित स्थान दिया है। द्वारिकाधिपति श्री कृष्ण तथा उनके बड़े भाई को भी जैनों ने अपने साहित्य में अच्छा स्थान दिया है। उनके पर आत्मीय-बन्धु श्री नेमिनाथ तो जैन धर्म के बाईसवें तीर्थंकर होने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं। गौतम बुद्ध से भी पहले अढ़ाई सौ वर्ष पूर्व जैन धर्म के तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्व नाथ भगवान का शासन प्रवर्त रहा था इन मर्म का इतिहासिक मूल्य चाहे जैसा आंका जाय परन्तु इतना तो स्वयं सिद्ध है कि महावीर स्वामी के अविर्भाव पूर्व भारतवर्ष में जैन धर्म का प्रभाव कायम था। बौद्ध धर्म के प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थों में जिस "नायपुत" अथवा निगंथ का नाम उल्लेख मिलता है वह बुद्ध के पूर्व का था इसमें किंचित मात्र भी शंका नहीं। जैन धर्म बुद्ध धर्म की शाखा तो है ही नहीं, बल्कि बुद्ध धर्म से भी अति प्राचीन है। इसलिये यहां पर फिर से कहा जाता है कि भारतीय दर्शन, भारतीय सभ्यता-भारतीय संस्कृति के सम्पूर्ण इतिहास में जैन धर्म का ही स्थान है।

अति प्राचीन समय की अर्धस्पष्ट और अस्पष्ट बात को भी जाने दीजिये। इतिहास का जब से प्रारम्भ होता है तब से जैन धर्मों का गौरव मानो सूर्य की किरणों की भांति पृथ्वी पर प्रकाशित हो रहा हो ऐसा लगता है, भारतवर्ष का चक्रवर्ती सम्राट मौर्यकुल चूड़ामणि चन्द्रगुप्त जैन धर्म का अनुयायी था ऐसे प्रमाण मिलते हैं। प्राचीन से प्राचीन वैयाकरण शाकटायन अथवा जैनेन्द्र का नाम आज कौन से व्याकरण के विद्यार्थी से अनभिज्ञ रहा है? विक्रमादित्य की राज सभा में जो नव रत्न थे उसमें एक रत्न जिन मतावलम्बी था ऐसा अनुमान हो सकता है। अभिधान-प्रणेताओं में हेमचन्द्राचार्य का स्थान अति उच्च कोटि का है। दर्शन शास्त्र में, गणित शास्त्र में, ज्योतिष में वैद्यक में, काव्य में, नीति में जैन विद्वानों ने जो योग दिया है—नये-नये सत्य की भेंट देकर जो पूर्ति की है उसकी गिनती करना सरल नहीं।

युरोप के मध्य युग के लोक साहित्य का मूल भारतवर्ष है तथा भारतवर्ष में प्रथम लोक साहित्य की रचना जैन विद्वानों द्वारा हुई है। जैन त्यागी पुरुष महान् लोक शिक्षक थे।

शिल्प और स्थापत्य में भी जैनी अग्रगण्य रहे हैं। कोई भी तीर्थ इसकी साक्षी दे सकता है। ईलोरा जैसे स्थानों में जैन कला-उपासना के अवशेष आज भी देखे जा सकते हैं। आबू तथा शत्रुंजय-कुम्भरियाजी, राणकपुर एवं जेसलमेर आदि के मन्दिरों ने कौन से कला प्रेमी को मन्त्र मुग्ध नहीं किया?

दक्षिण मे आज भी गोम्मटेश्वर की मूर्ति काल की भयकरता के सामने मानो हँसती खडी नजर आ रही है। इम्पीरियल गैजेटीयर ऑफ इण्डिया मे इसके सम्बन्ध मे एक उल्लेख है कि These Collosal monolithic nude Jain statues are among the wonders of the world जगत का यह एक आश्चर्य है। इसके सिवाय विधर्मियो के युग-युग व्यापी अत्याचारों, परिवर्तनो, अग्नि और भूकम्प के तूफानो आदि से बचकर जीवित रहे जो आज नमूने दृष्टिगोचर होते है वे ऐसा प्रमाणित करते है कि उस सभ्यता के लगभग सभी क्षेत्रों मे जैनों ने उत्तम उत्कर्ष साधा था।

जैन समाज का धारावाहिक इतिहास चित्रित करने की मेरे मे शक्ति नहीं, जैन विचार प्रवाह की सभी तरङ्गो का विवरण उपस्थित करना भी प्राय असभवित है। मात्र यहाँ पर जैन दर्शन और विज्ञान का एक सक्षिप्त विवरण प्रगट करना चाहता हू।

जैन सिद्धांत के अनुसार जगत मे मुख्य दो तत्व है, जीव और अजीव। जीव याने आत्मा। जीव से भिन्न वह अजीव।

विज्ञान—जडविज्ञान

अजीव पदार्थ के आश्रय से ही जडविज्ञान का अस्तित्व है। वेदान्त जिसको माया कहता है वही यह अजीव पदार्थ होगा ऐसा भले कोई मान ले माया की स्वतन्त्र सत्ता जैसा

कुछ नहीं, इस बिना वह नकामी है परन्तु यह अजीव तत्व तो जीव तत्व जितना ही स्वाधीन, स्वतन्त्र, अनादि, अनन्त है। अजीव वाले सांख्य की कही हुई प्रकृति भले ही कोई समझे। प्रकृति जो कि स्वाधीन, स्वतन्त्र, अनादि, अनन्त है तो भी एक है, परन्तु अजीव तत्व एक से भी अधिक है। न्याय तथा वैशेषिक दर्शन द्वारा स्वीकृत अणु तथा परमाणु भी जैन दर्शन द्वारा स्वीकृत अजीव तत्व से भिन्न पड़ता है, क्योंकि अणु परमाणु सिवाय अजीव तत्व के अनेक भेद हैं। बौद्धों का शून्य भी इस अजीव तत्व में नहीं मिलता। जैन मतानुसार अजीव के निम्न पाँच भेद हैं।

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

पुद्गल

अंग्रेजी में जिसको Matter कहते हैं उसको जैन दर्शन पुद्गल कहता है, पुद्गल का स्वरूप है। रूप, रस, स्पर्श तथा गन्ध ये पुद्गल के चार गुण हैं। पुद्गल की संख्या अनन्त है। शब्द, बंध, (मिलन), सूक्ष्मता, स्थूलता, आकार, भेद, अन्धकार, छाया, आलोक तथा ताप पुद्गल के पर्याय हैं। अर्थात् पुद्गल में से इनकी उत्पत्ति होती है। शब्द, आलोक (प्रकाश) तथा ताप को पौद्गलिक मानने में जैनों ने कतिपय अंशों में वर्तमान वैज्ञानिक शोध का आभास दिया है। अधकार तथा छा[illegible] है ऐसा न्याय दर्शन नहीं

धर्म

धर्म अथात् पुण्य कर्म तमा अपने मानते है परन्तु जैन दर्शन इसका यहां अन्य अर्थ करता है। Principle of motion की भांति ही इस धर्म का अर्थ है। पानी जिस भांति मच्छलियो की गति मे सहाय करता है उसी भांति अजीवतत्व पुद्गल तथा जीव को गति मे सहाय करता है, उसी का नाम धर्म है ऐसा जैन विज्ञान कहता है। धर्म अमूर्त है, निष्क्रिय है तथा नित्य है। यह जीव तथा पुद्गल को चलाता नहीं परन्तु यह तो केवल इसकी गति मे सहाय करता है।

अधर्म

अधर्म अथात् पाप कर्म कोई न समझे Principle of rest जैसा ही अधर्म का अर्थ जैन दर्शन करता है। मार्ग भूला हुआ पथिक गहन अधकार देखकर रात्री को एक स्थान पर आराम करता है उसी भांति अधर्म—अजीवतत्व पुद्गल तथा जीव को स्थिती विषय मे सहायता करता है। धर्म की भांति अधर्म भी अमूर्त निष्क्रिय तथा नित्य है। यह जीव तथा पुद्गल को रोकता नहीं केवल स्थिति मे सहाय करता है।

आकाश

जो अजीव तत्व जीवादि पदार्थ को अपने लिए अवकाश दे—अथात् जिस अजीव तत्व के अन्दर जीवादि पदार्थ रह सके उसीका नाम आकाश। पाश्चात्य वैज्ञानिक इसको space

के नाम से पहचानते हैं। आकाश नित्य है, व्यापक है तथा जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म तथा काल के आश्रय भूत है। जैनी इन आकाश को दो भाग में बाँटते हैं। (१) लोकाकाश (२) अलोकाकाश। लोकाकाश के लिये ही जीवादि पदार्थ आश्रय पाता है, लोकाकाश के बाहर अनन्त शून्यमय अलोक है

काल

काल अर्थात् time पदार्थ के परिवर्तन में जो अजीवतत्व सहायता करता है उस का नाम काल। यह नित्य है, अमूर्त है, यह असंख्य द्रव्यमय लोकाकाश परिपूर्ण है।

पुद्गल आदि पदार्थ की इतनी आलोचना से कोई भी समझ सकता है कि आज के जड़ विज्ञान के मूल तत्व जैन दर्शन में छुपे पड़े हैं। प्राचीन ग्रीस के Democritus से लेकर वर्तमान युग के Boscovitch तक के सभी वैज्ञानिकों ने Atom अथवा पुद्गल के अस्तित्व को स्वीकार किया है। यह Atom अनन्त है ऐसा भी इन सब ने स्वीकार किया है तथा इसके संयोग वियोग के कारण ही जड़ जगत के स्थूल पदार्थ उत्पन्न होते हैं तथा विलयपाते हैं, इस विषय में भी वे एक मत हैं।

प्रथम Parmenides, zeno वगैरह दार्शनिक धर्म अथवा principle of motion स्वीकार नहीं करते थे। परन्तु इसके बाद न्यूटन जैसे विद्वानों ने गतितत्व का सिद्धांत स्थापित

ेिया। ग्रीस के Heraclitus जैसे दार्शनिक ने अधर्म-तत्व मानने से इनकार किया, principle of Rest इनको मान्य नहीं था, परन्तु इसके बाद Perfect equilibrium में अधर्म तत्व का नामांतर से भी मान्य हुआ। कैंट तथा हेगल आकाश तत्व को एक मानसिक व्यापार बताकर बिल्कुल उड़ा देना चाहते थे। परन्तु इसके बाद रसेल जैसे आधुनिक दार्शनिकों ने Space की तात्विकता मान्य की। आकाश एक सत् की भाँति सत्य पदार्थ है, इस बात को अधिकतर Einstein भी मानते हैं। आकाश की भाँति काल को भी कतिपय लोगों ने मनो व्यापार कह कर उड़ा देने का प्रयत्न किया, परन्तु फ्रांस के एक सुप्रसिद्ध दार्शनिक Bergson ने तो यहाँ तक कह दिया कि काल वास्तव में Dynamic reality है। काल का प्रबल अस्तित्व मंजूर किये बिना छुटकारा नहीं।

उपरोक्त पाँच प्रकार के अजीव पदार्थ के साथ जो तत्व कर्मवश जकड़ा हुआ है उसी का नाम जीव है।

जीव

जैन दर्शन का जीव तत्व वेदान्त के ब्रह्म से ब्रह्म एक तथा अद्वितीय है। जीव की संख्या 'अनन्त' पुरुष से भी अलग है, क्योंकि
परन्तु बन्धन ग्रस्त है।
भी जीव तत्व भिन्न
बौद्धों विज्ञान प्रवाह

सत्-सत्य नित्य पदार्थ है। जैन दर्शन जीव का अस्तित्व, चेतना उपयोग प्रमुत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, देहपरमाणत्व तथा अमूर्तत्व इत्यादि गुण वर्णन करता है।

प्राण विद्या

Biology विषय की आधुनिक खोज का पूर्वाभास, प्राचीन जैनों द्वारा उपदेशित जीव विचार में बराबर मिलता है। जैन लोग पृथ्वी, पानी, अग्नी तथा वायु को सूक्ष्म और स्थूल दो प्रकार के ऐकेन्द्रिय जीवों का अस्तित्व मानते हैं। इन सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव पुंज को आज के वैज्ञानिक—प्राणीतत्वनेता microspic organisms के नाम से पहचानते हैं। वनस्पति में भी प्राण है, स्पर्श अनुभव करने की शक्ति है ऐसा भी कहते है, आज के नवीन युग में आचार्य जगदीशचन्द्र वसु ने वनस्पति शास्त्र सम्बधी नवीन खोज कर जो आश्चर्य फैलाया है उसका मूल वस्तुतः इस एकेन्द्रिय जीव वाद में ही छिपा हुआ था।

आत्म विद्या

जीव तत्व की भांति जैनो द्वारा प्ररूपित आत्म विद्या Psychology में आधुनिक खोजों का अत्याधिक आभास मिलता है। जीव के गुणों के वर्णन करते समय अपने चेतना तथाउपयोग का उल्लेख कर गये है। इन मुख्य गुणो के विषय मेंअविर विचार करें।

चेतना

चेतना तीन प्रकार की है। कर्मफलानुभूति, कार्यानुभूति तथा ज्ञानानुभूति। स्थावरजीव-पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति के जीव कर्म फल मात्र भोगते हैं। त्रस जीव—दो, तीन, चार तथा पाँच इन्द्रिय के जीव अपने कार्य का अनुभव करते हैं। उच्च प्रकार के जीव ज्ञान के अधिकारी होते हैं। चेतना के ये तीन प्रकार अथवा पर्यायों को, पूर्ण चैतन्य का क्रम विकास के तीन स्तर कह सकते हैं। मनुष्य से इतर जीव मात्र अचेतन यन्त्र की भांति हैं ऐसा जो कहते हैं उनका खण्डन हजारों वर्ष पूर्व जैनों ने किया है। वर्तमान युग में क्रम विकास करनेवाले मनो विज्ञान-Evolutionary Psychology के दो मूल सूत्र स्वीकृति किये हैं वे प्रथम से ही जैन दर्शन में थे। ये दो सूत्र यह रहे (१) मनुष्य से अलग-नीची कोटि के प्राणियों में एक प्रकार का निरातिम प्रकार का चैतन्य, Sub-human Consciousness होता है। मानव—चैतन्य, इसी चैतन्य में क्रमवार प्रगट होता है। (२) प्राण तथा चैतन्य Life and Consciousness बराबर सहगामी होता है। Co extensive है।

उपयोग

जीव का दूसरा विशिष्ट लक्षण उपयोग। दर्शन तथा ज्ञान के भेद से उपयोग दो प्रकार होते हैं।

दर्शन

व्याप्ति विशेष ज्ञान—वर्जित सामान्य की अनुभूति को दर्शन कहते हैं। दर्शन चार प्रकार होता है (१) चक्षु दर्शन (२) अचक्षु दर्शन (३) अवधि दर्शन (४) केवल दर्शन। चक्षु सम्बन्धी अनुभूति मात्र चक्षु दर्शन। इसी भांति शब्द, रस, स्पर्श तथा गन्ध सम्बन्धी अनुभूति का नाम अचक्षु दर्शन। स्थूल इन्द्रिय से अगम्य विषय की मर्यादावाली अनुभूति का नाम अवधि-दर्शन Theosophist सम्प्रदाय जिसे Clairvoyance कहते हैं उसके जैसा ही कतिपय अंश में यह अवधि दर्शन है। विश्व की समस्त वस्तुओं का अपरोक्ष दर्शन अनुभव का नाम केवल दर्शन।

ज्ञान

दर्शन के बाद ज्ञान के उदय को उपयोग के दूसरे भांति का भेद कह सकते हैं। ज्ञान प्रथमतः दो प्रकार का होता है प्रत्यक्ष तथा परोक्ष। मति, श्रुतादि अष्ट-विध ज्ञान का इन दो प्रकार के ज्ञान में समावेश हो जाता है। उसमें भी 'कुमति' मतिज्ञान का "कुश्रुत" श्रुत ज्ञान का तथा "विभंग" अवधिज्ञान का आभास, अर्थात् Fallacious forms मात्र होता है।

मति

दर्शन के बाद जो ज्ञान इन्द्रिय की अपेक्षा से होता है उसका नाम मति ज्ञान। मति ज्ञान तीन प्रकार होता है, उपलब्धि

भावना तथा उपयोग। इन तीन प्रकार के मतिज्ञान को जैन दार्शनिक अधिकतर पाच भेद मे विभक्त करते है, मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता तथा अभिनिबोध।

(शुद्ध) मति

दर्शन के बाद शीघ्र ही जो वृति जन्मती है उसका उपलब्धि अथवा शुद्ध मति ज्ञान कहते है। पाश्चात्य मनो विज्ञान इसको Sence institution अथवा Perception कहते है। जैन दार्शनिक मति ज्ञान के दो भेद बताते है। जो मति ज्ञान बाह्य इन्द्रिय पर आधार रखता है उसको इन्द्रिय निमित मति ज्ञान तथा जो मति ज्ञान केवल अनिन्द्रिय अर्थात मन की अपेक्षा रखता है उसको अनिन्द्रिय निमित मति ज्ञान कहते है। दार्शनिक Locke, Idea of Sensation तथा Idea of reflection इस भांति जो दो प्रकार की चितवृति का निरूपण करते है, उसी भाति आज के दार्शनिक जिसको Extraspection (बाहिरनुशीलन) तथा Introspection (अन्तरनुशीलन) से प्राप्त किया ज्ञान कहते है उसी को जैन दार्शनिक अनुक्रम से इन्द्रियनिमितमति ज्ञान तथा अतिन्द्रियनिमित मति ज्ञान कहते है।

कर्णादि पांच इन्द्रिय के भेद से इन्द्रियनिमित मति ज्ञान भी पाँच प्रकार का है।

वर्तमान युग के वैज्ञानिकों ने जैसे Perception मे विभिन्न प्रकार की चित्तवृति की खोज प्राप्त की है उसी भांति जर

ऋषियों ने मति ज्ञान के अन्दर चार प्रकार की वृत्तियों की खोज प्राप्त की थी। जिनको इस प्रकार क्रम व्यवस्थित किया है। अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

अवग्रह

बाह्य वस्तु के सामान्य आकार का जो ज्ञान होता है, उसका नाम अवग्रह। बाह्य वस्तु के स्वरूप सम्बन्धी अवग्रह कोई सुनिश्चित सविशेष ज्ञान नहीं रहता। यह Sensation अथवा कतिपय मत में Primumcognitum है।

ईहा

अवग्रह—गृहीत विषय में ईहा की क्रिया चलती है। अवगृहित विषय सम्बन्धीत अधिक—खास ज्ञात करने की इच्छा का नाम ईहा है। अर्थात् अवगृहित विषय का प्रणिधान—Perceptual Attention (विचारणा)।

अवाय

परिपूर्ण इन्द्रियज्ञान की यह तीसरी भूमिका है। ईहित विषय सम्बन्धी सविशेष ज्ञान का नाम अवाय। अवाय अर्थात् Perceptual determination (निर्धार)

धारणा

इन्द्रिय ज्ञान के विषय को स्थितिशील करता है उसका नाम धारणा, इसको Perceptual retention क

धारणा ...

अवग्रहादि के दूसरे अनेक सूक्ष्म भेद हैं परन्तु अति विस्तार हो जावे, निरसता आजावे इसी भय से छोड़ना पड़ता है।

विद्वानों को इतने पर से ही ज्ञात हो जायगा कि आधुनिक युरोपीय विद्वानों ने Perception का जो क्रम विकास बताया है उसीका ही शुद्ध मति ज्ञान के विषय में जैनों ने प्रथम से ही विवरण दे दिया है।

स्मृति

दूसरे प्रकार के मति ज्ञान का नाम स्मृति। इससे इन्द्रिय ज्ञान के विषय का स्मरण होता है। स्मृति को पाश्चात्य वैज्ञानिक Recollection अथवा Recognition कहते हैं। H0bbes के मतानुसार तो स्मरण का विषय अथवा Idea यह मात्र मरणासन्न इन्द्रिय ज्ञान है—Nothing but decaying Sense Hume भी ऐसा ही मानता है। दार्शनिक Reid इस सिद्धांत का अच्छी तरह से खण्डन करता है। वह कहता है कि स्मरण का विषय जरूर इन्द्रिय-ज्ञान-विषय की अपेक्षा रखता है तथा इसमें सदृशता भी है, फिर भी कितनेक अंश में यह नया विषय है। जैन ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व, स्मृति के विषय में जो निर्णय दिया था उसका ही ये वैज्ञानिक अनुवाद करते हों ऐसा लगता है और यह कोई कम आश्चर्य की बात नहीं।

संज्ञा (प्रत्यभिज्ञान)

संज्ञा का दूसरा नाम प्रत्यभिज्ञान है। पाश्चात्य मनोविज्ञान में यह Assimilation, Comparison तथा Conception के नाम से उल्लेख किया जाता है। अनुभूति अथवा स्मृति की सहायता से विषय की तुलना द्वारा ज्ञान संग्रह करने का नाम प्रत्यभिज्ञान।

इस प्रत्यभिज्ञान की सहायता से चार प्रकार के ज्ञान प्राप्त किये जा सकते हैं। (१) गवय नाम से पहिचाना जानेवाला प्राणी गाय जैसा है। अंग्रेजी में इस ज्ञान को Association by Similarity कहते हैं। भैंस के नाम से पहिचाना जाने वाला प्राणी गाय से भिन्न है अर्थात् Association by contrast (३) गो-पिंड अर्थात् गाय विशेष को देखने से गोत्व अर्थात् गो-सामान्य विषय का ज्ञान होता है। इस सामान्य ज्ञान को अंग्रेजी में Conception कहते हैं। भिन्न-भिन्न विषयों के सामान्य को जैन दर्शन में तिर्यक् सामान्य कहा है। इस तिर्यक् सामान्य का पाश्चात्य नाम Species Idea (४) एक ही पदार्थ की अलग अलग परिणति के अन्दर भी यही एक अथवा अद्वितीय पदार्थ की उपलब्धि होती है। अंगूठी या कुँडल के अलग अलग आकार, में अलग अलग अलंकार के रूप में परिणत होने पर भी, प्रत्यभिज्ञान के प्रताप से अपने मूल ता स्वर्ण नाम के द्रव्य को ही देख सकते हैं। अलग अलग परिणतियों के अंदर जो द्रव्यगत ऐक्य, सामान्य है,

दर्शन में ऊर्ध्वता सामान्य कहा जाता है। ऊर्ध्वता सामान्य का पाश्चात्य नाम Substratum अथवा Esse

चिंता

साधारणतया चिन्ता तर्क अथवा ऊह के नाम से पहिचानी जाती है। प्रत्यभिज्ञान से प्राप्त किये गये विषय के अन्दर अच्छेद-सम्बन्ध का खोज करना ही तर्क का काम। पाश्चात्य मनोविज्ञान में इसे Induction कहते हैं। युरोपीय पंडित कहते हैं कि Induction यह observation भूयो-दर्शन का फल है। जैन नैयायिक भी उपलम्भ तथा अनुपलम्भ द्वारा तर्क की प्रतिष्ठा मानते हैं। दोनों के कहने का मतलब एक ही है। पाश्चात्य तार्किक लोग Inductive truth को एक Invariable अथवा unconditional relationship कहते हैं। जैनाचार्यों ने अनेकानेक शताब्दियों पूर्व यही बात कही थी। इनके मत के अनुसार तर्क ऊर्ध्वता सम्बन्ध का नाम अविनाभाव अथवा अन्यथानुपपत्ति है।

अभिनिबोध

तर्क लब्ध विषय की सहायता से दूसरे विषय के ज्ञान को अभिनिबोध कहते हैं। अभिनिबोध साधारणतः अनुमान माना जाता है। पाश्चात्य न्याय ग्रन्थों में अनुमान को Deduction, Retiocination अथवा Syllogism कहते है। "पर्वतोवह्निमान" क्योंकि इसमें धुआ दिखाई देता है। इस प्रकार के बोध का नाम अनुमान। इसमें 'पर्वत' धर्मी, किंवा

पक्ष, "वह्नि" साध्य तथा "धूम" हेतु, लिंग, अथवा व्याप्ति। पाश्चात्य न्याय ग्रन्थों के Syllogism के अन्दर इन तीनों की विद्यमानता दिखाई पड़ती है। इनका नाम Minor Term, Mazorterm तथा Middle term. अनुमान व्याप्तिज्ञान ऊपर, अर्थात् धुँआ और अग्नि के विषय में जो एक अविनाभाव सम्बन्ध है उसके ऊपर प्रतिष्ठित है। इस व्याप्ति तत्व का समावेश पाश्चात्य न्याय के Distribution of the middle term के अन्दर आ जाता है। जैन दृष्टि से अनुमान दो प्रकार के होते हैं (१) स्वार्थानुमान (२) परार्थानुमान। अनुमान करने वाला निज अनुमान द्वारा स्वयं कोई नतीजा निकाले उसका नाम स्वार्थानुमान और जो वचन-विन्यास द्वारा वह अनुमान करनेवाला किसी दूसरे को यह बात समझावे उसको परार्थानुमान कहते हैं। ग्रीक दार्शनिक Aristotle अनुमान के तीन अवयव गिनाते हैं। (१) जो-जो धूमवान है वह-वह वह्निमान है। (२) यह पर्वत धूमवान है। (३) इसलिये यह पर्वत वन्हिमान है। बौद्ध लोग अनुमान के इस प्रकार तीन अवयव गिनाते हैं (१) जो जो धूमवान वह-वह वह्निमान (२) जैसे कि महानस (३) यह पर्वत धूमवान है। नैयायिक भी अनुमान के तीन अवयव मानते हैं। इनके मतानुसार अनुमान के इस प्रकार दो प्रकार के आकार हो सकते हैं। इस प्रकार (१) यह पर्वत वह्निमान है (२) क्योंकि यह पर्वत धूमवान है। जो जो धूमवान वह-वह वह्निमान, जैसे कि महानस (रसोई घर)।

आकार जो जो धूमवान वह-वह वह्निमान, जैसे कि महानस। यह पर्वत वह्निमान है। नैयायिक अनुमान को पंचावयव मानते हैं। इनके मतानुसार अनुमान के आकार इस प्रकार हैं। (१) यह पर्वत वह्निमान है। (२) क्योंकि यह पर्वत धूमवान है। (३) जो-जो धूमवान वह वह वह्निवान, जैसे कि महानस। (४) यह पर्वत धूमवान है। (५) इसलिये यह पर्वत वह्निमान है। अनुमान के पाँच अवयव के नाम अनुक्रम से प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय तथा निगमन है। जैन दर्शन के नैयायिक कहते हैं कि उदाहरण, उपनय तथा निगमन निरर्थक है। जैनों का अनुमान दो अवयव का है —(१) यह पर्वत वह्निमान है, (२) क्योंकि यह पर्वत धूमवान है। जैनी कहते हैं कि कोई भी बुद्धिमान प्राणी इन दो ही अवयव से अनुमान का विषय समझ सकता है, इसलिये अनुमान के दूसरे अवयव व्यर्थ हैं। परन्तु श्रोतागण जो अल्प बुद्धि के हों तो जैनी नैयायिकों के पाँच अवयव तो स्वीकारते हैं ही इतना ही नहीं परन्तु अधिक में प्रतिज्ञा शुद्धि, हेतु शुद्धि जैसे दूसरे पांच अवयव सम्मलित कर अनुमान के दशावयव भी बनाते हैं।

श्रुत ज्ञान

अनुमान तक मतिज्ञान का अर्थात् इन्द्रियसरिष्ट ज्ञानका अधिकार है। श्रुतज्ञान नित्य-सत्य का भंडार रूप है इसका दूसरा नाम आगम है। जैनी ऋग्वेद आदि चार वेद को आगम या प्रमाण रूप से स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि

जिन्होंने अपनी साधना—तपश्चर्या के बल पर लोकोत्तर दिव्य प्राप्त की हो उसी सिद्ध, सर्वज्ञ, तीर्थंकर वीतराग भगवान का वचन ही सर्वोत्कृष्ट आगम कहा जाता है। जैनी अपने आगम को कदाचित् वेद के रूप से कहते हैं तथा उसको चार भाग में बाँटते हैं। मति ज्ञान का अवग्रहादि भेद करके जिस भाँति चार भेद अथवा पर्याय हैं उसी भाँति श्रुतज्ञान विषय में भी वे लब्धि, भावना, उपयोग तथा नय ऐसे चार भेद कहते हैं। उपयोगादि, श्रुतज्ञान के चार भेद वस्तुतः व्याख्यान-भेद मात्र हैं। यह व्याख्यान-प्रणाली कतिपय अंश में पाश्चात्यों के तर्क विद्या सम्बन्धी Explanation के साथ मेल खा सकती है।

लब्धि

किसी भी वस्तु को, उसके साथ सम्बन्ध रखते किसी भी विषय की सहायता से पहिचाना जाय उसका नाम लब्धि।

भावना

किसी भी विषय को, पूर्व धारण किये किसी विषय के स्वरूप, प्रकृति अथवा क्रिया की सहायता से पहिचानने का प्रयत्न करे उसका नाम भावना। भावना विषय-व्याख्यान की एक अति उच्च प्रणाली का है। यह पदार्थ तथा तत्सम्बन्धी दूसरी अनेक वस्तुओं का विचार कर निर्णय योग्य पदार्थ का निरूपण करने आगे बढ़ती है।

उपयोग

भावना—प्रयोग द्वारा [illegible] निर्णय [illegible]

नय

भारतीय दर्शनो मे नय-विचार यह जैन दर्शन की एक विशिष्टता है, पदार्थ की सम्पूर्णता की ओर पूरा लक्ष दिये विना, किसी एक विशिष्ट दृष्टि से विषय की प्रकृति का निरूपण करना इसका नाम 'नय"। द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक नयका तथा पर्याय, पर्यायार्थिक नय का विषय है। द्रव्यार्थिक नय नैगम, सग्रह तथा व्यवहार के भेद से तीन प्रकार है तथा ऋजुसूत्र शब्द, समभिरूढ तथा ऐवंभूत के भेद से पर्यायर्थिक नय चार प्रकार है।

नैगम

वस्तु के स्वरूप का विचार नहीं कर एक बाह्य स्वरूप के सम्बन्ध का विचार करने का नाम नैगम है। एक मनुष्य लकडी, पानी तथा दूसरी सामग्री लेकर जा रहा हो उसको पूछने मे आवे कि "तुम यह क्या कर रहे हो ?" तो वह जवाब देगा कि "मेरे को पकाना है।" यह उत्तर नैगम नय की दृष्टि से है। इसमे लकडी, पानी तथा दूसरी सामग्री के स्वरूप सम्बन्धी जरा भी खुलासा नही। मात्र इसका क्या उद्देश्य है उसका ही वर्णन करता है।

सग्रह

वस्तु के विषय भाव की ओर लक्ष न देकर जिस भाव से सम्बन्ध हो उसी वस्तु, उसी जाति की दूसरी वस्तु के साथ मे सदृशता या समानता रखती हो उस ओर दृष्टि रखने का

नाम सग्रह नय। सग्रह नय के साथ मे पाश्चात्य दर्शन की Classification की समानता हो सकती है।

व्यवहार

उपरोक्त नय से यह बिलकुल अलग पडता है वस्तुत सामान्यभाव की उपेक्षा कर, वैशिष्ट के प्रति दृष्टि डालने का नाम व्यवहार-नय। पाश्चात्य विज्ञान मे इसको specification अथवा Individuation कहते हैं।

ऋजुसूत्र

वस्तु की परिधि को जरा अधिक सकुचित बना, उसकी वर्तमान अवस्था द्वारा निरूपण करने का नाम ऋजुसूत्र।

शब्द

यह तथा इसके बाद के दो नय शब्द के अर्थ का विचार करते है। किसी भी शब्द का सच्चा अर्थ क्या? इस प्रश्न का जवाब तीन नय अपनी अपनी पद्धतियों के अनुसार देते है। प्रत्येक परवर्तीनय, पूर्ववर्ती नय की अपेक्षा से शब्द के अर्थ को अधिक सकीर्ण बनाता है। शब्द-नय शब्द के विषय मे अधिक से अधिक अर्थ का आरोपण करता है। तेनार्थवाचक शब्द, लिंग—वचनादि क्रम से भिन्न होते हुए भी एक ही अर्थ का सूचन करता है यह इस शब्द नय का आशय है।

समभिरूढ

समभिरूढ, प्रत्येक शब्द के मूल-धातु की ओर ले जाता है। पेनार्यवाचक शब्द भी वस्तुत भिन्न भिन्न अर्थवाचक है,

ऐसा घट कहलाता है। शक्र तथा पुरन्दर शब्द, शब्द नय के अनु-
सार एकार्थवाचक हैं। परन्तु समभिरूढ नय अपेक्षा से तो
शक्तिशाली गुण ही शक्र तथा पुर विदारण कारी ही पुरन्दर
है। अतएव ही शक्र तथा पुरन्दर भिन्न भिन्न अर्थवाचक हैं।

एवंभूत

जिस समय कोई भी पदार्थ, निर्दिष्ट रूप से क्रियाशील हो
वहीं तक ही उस पदार्थ को तत् सम्बन्धी क्रिया वाचक शब्द
से पहिचान सकते हैं। दूसरे रूप से उस शब्द का व्यवहार
तब होवे जहाँ तक गुण अभिव्यक्ति है वहीं तक वह शक्र है।
शक्तिहीन हुआ तो उसको शक्र नहीं कह सकते। इसका नाम
एवंभूत नय है।

पदार्थ का एक देश "नय" कहलाता है। पदार्थ का यथार्थ
तथा परिपूर्ण स्वरूप देखना हो तो जैनागम द्वारा स्वीकृत
स्याद्वाद अथवा सप्तभंगी और दर्शन की एक घड़ी से नहीं
निरखना है।

स्याद्वाद

पदार्थ अगणित गुण के आश्रय रूप है। पदार्थ के विषय
में यह समस्त भिन्न गुणों का क्रमशः आरोप करना स्याद्वाद
नहीं, एक साथ अविरोध गुण का पदार्थ में आरोपण करने
से इस पदार्थ का सात प्रकार से निरूपण हो सकता है, सात
प्रकार से इसका वर्णन हो सकता है। इन सात प्रकार के वर्णन
का नाम स्याद्वाद अथवा सप्तभंगी न्याय। उदाहरण रूप से घट

नाम के पदार्थ में अस्तित्व नाम के गुण का आरोपण करें। अब इसका सात प्रकार किस ढङ्ग से निरूपण हो सकता है यह अपने देखें।

(१) स्यादस्ति घट अर्थात् किसी एक अपेक्षा से घट है ऐसा कहा जाय। परन्तु घट है इसका अर्थ क्या ? घट एक नित्य, सत्य, अनन्त, अनादि अपरिवर्तनीय पदार्थ के रूप से विद्यमान है ऐसा इसका अर्थ नहीं है। घट है ऐसा कहने का अर्थ इतना ही कि स्व रूप के हिसाब से अर्थात् घट के रूप से स्वद्रव्य के हिसाब से अर्थात् यह माटी का बना हुआ है इस हिसाब, स्व क्षेत्र अर्थात् अमुक एक शहर के विषय में (पाटली-पुत्र के विषय में) तथा स्वकाल अर्थात् अमुक एक ऋतु के (वसन्त ऋतु के) विषय में वर्तमान है।

(२) स्यान्नास्ति घट अर्थात् किसी एक अपेक्षा से घट नहीं है। पर-रूप अर्थात् पट रूप से, पर द्रव्य से अर्थात् सुवर्णमय अलङ्कार की अपेक्षा से, पर क्षेत्र अर्थात् दूसरे किसी शहर की (गधार की) अपेक्षा से तथा पर-काल अर्थात् दूसरी किसी एक ऋतु की (शीत ऋतु की) अपेक्षा से यह घट नहीं है, ऐसा भी कहा जा सकता है।

(३) स्यादस्ति नास्ति च घट अर्थात् एक अपेक्षा से घट है और दूसरी अपेक्षा से घट नहीं है। स्व-द्रव्य, स्व-क्षेत्र की अपेक्षा से यह घट है तथा पर-द्रव्य, पर क्षेत्र की अपेक्षा से यह घट यह बात ऊपर कहने में आई है।

(४) स्याद् अवक्तव्य घट अर्थात् एक अपेक्षा से घट अवक्तव्य है। एक ही समय में अपने को ऐसा लगता है कि घट है और घट नहीं है, इसका अर्थ यह हुआ कि घट अवक्तव्य हो गया, क्योंकि भाषा में ऐसा कोई शब्द नहीं है कि जो एक ही साथ में अस्तित्व तथा नास्तित्व दर्शा सके। तीसरे भाग में अपने जिस घट का अस्तित्व देख गये उसका आशय ऐसा नहीं है कि 'जिस क्षण घट का अस्तित्व लगता है उसी क्षण इसका नास्तित्व लगता है'।

(५) स्यादस्ति च अवक्तव्य घट—अर्थात् एक अपेक्षा से यह घट है और यह भी अवक्तव्य है। पहला तथा चौथा भागा को साथ लेने से समझ में आवेगा।

(६) स्यान्नास्ति च अवक्तव्य घट अर्थात् एक अपेक्षा से यह घट नहीं और यह भी अवक्तव्य है। दूसरा तथा चौथा भांगा के सकलन ऊपर इस नय का आधार है।

(७) स्यादस्ति च नास्ति च अवक्तव्य घट अर्थात् एक अपेक्षा से घट है, घट नहीं है और यह भी अवक्तव्य है। यह सातवाँ भांगा तीसरा और चौथा भांगा के मेल पर आयोजित है।

जैन दार्शनिक कहते हैं कि वस्तु विचार के लिये यह सप्तभंगी अथवा स्याद्वाद अनिवार्य है। स्याद्वाद के आश्रय बिना वस्तु का सत्य स्वरूप समझ में नहीं आ सकता। "घट है" ऐसा कहने मात्र से इसका सम्पूर्ण निवरण आ गया ऐसा नहीं

होता। "घट नहीं है" ऐसा कहने पर भी अति अपूर्णता रह जाय। "घट है तथा घट नहीं भी" ऐसा कह देना भी बराबर नहीं। "घट अवक्तव्य है" यह विवरण भी सम्पूर्ण नहीं। सप्तभंगी के भेद दो भांगा की सहायता से वस्तु-स्वभाव का पूरा-पूरा निरूपण नहीं हो सकता ऐसा जैनी भार पूर्वक कहते हैं। और जैनियों की यह मान्यता बिलकुल उड़ा देने जैसी नहीं है। भेद भेद भांगा में कुछ न कुछ सत्य तो अवश्य है। पूर्वोक्त सात नय की दृष्टि से देखें तो ही सम्पूर्ण सत्य तथा तथ्य प्राप्त कर सकते हैं, अस्तित्व के विषय में जिस सप्तभंगी की अवतारणा अपने देख गये उसी भांति नित्यवादी गुण के लिए भी यह सप्तभंगी घट सकती है। अर्थात् पदार्थ नित्य है कि अनित्य? इस प्रश्न के जवाब में जैनी सप्तभंगी की सहायता लेते हैं। जैन सिद्धान्त तो कहता है कि पदार्थ तत्व के निरूपण के लिए स्याद्वाद ही एकमात्र उपाय है।

द्रव्य

द्रव्य की उत्पत्ति और उसका नाश भी है ऐसा अपने मानते हैं। भारतवर्ष में बौद्ध लोग तथा ग्रीस में *Heralitus* के शिष्य द्रव्य को अनित्य गिनते हैं, परन्तु सच कहा जाय तो दिखाई देती उत्पत्ति और दिखाई देते विनाश में अर्थात् परिवर्तन मात्र के मूल में एक ऐसा तत्त्व होता है कि जो सर्वेव अविकृत ही रहता है। उदाहरण रूप से अलंकार परिवर्तन में सोना तो ज्यों का त्यों ही रहता है—मात्र आकार बदलता

रहता है। भारतवर्ष में वेन्दातीयों ने ग्रीस में Parmenides के अनुयाइयों ने परिवर्तन आदि जैसी वस्तु ही उड़ा दी—द्रव्य की नित्य सत्ता तथा अविकृति ऊपर वजन दिया। स्याद्वादी जैनी इन दोनों बात को अमुक अपेक्षा से स्वीकृत करते हैं तथा अमुक अपेक्षा से नहीं भी। इनका कहना ऐसा है कि सत्ता भी है उसी प्रकार परिवर्तन भी है। इसीलिये वे द्रव्य का वर्णन करते समय इसको उत्पाद-व्यय ध्रौव्य-युक्त कहते हैं। मतलब (१) द्रव्य की उत्पति है, (२) द्रव्य का विनाश है तथा (३) द्रव्य की एक ऐसी भी अवस्था है जो कि उत्पति विनाशरूप परिवर्तन में भी अविकृत-अपरिवर्तित तथा अटूट रह जाती है।

द्रव्य, गुण, पर्याय

द्रव्य का विचार करते समय इसके गुण तथा पर्याय का भी विचार करना चाहिये। जैनी द्रव्य को कतिपय अंश में Cartesian के Substance जैसा मानते हैं। द्रव्य के साथ जो चिरकाल अविच्छिन्नपूर्वक रहे अथवा जिसके बिना द्रव्य, द्रव्य ही न कहा जाय उसको वे लोग गुण कहते हैं। द्रव्य स्वभावतः अविकृत रहकर अनन्त परिवर्तनों में जो दिखाई दे वह पर्याय। जैनी जिसको पर्याय कहते हैं उसको Cartesian Mode कहते हैं। जैन दृष्टि से पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल पाँच अजीव द्रव्य हैं। जीव यह भी द्रव्य है। सब मिलाकर छः द्रव्य हैं।

अवधिज्ञान

मति—श्रुतादि पंच विध ज्ञान में अपने मति ज्ञान तथा श्रुत ज्ञान के विषय में विचार कर गये। अब अवधि ज्ञान आदि लें। स्थूल इन्द्रिय—गोचरता के बाहर जो सर्व रूप विशिष्ट द्रव्य हैं उसकी असाधारण अनुभूति, का नाम अवधि ज्ञान। आज कई लोग जिसको Clairvoyance कहते हैं। उसके साथ में किसी अपेक्षा से इसका मिलान किया जा सकता है। अवधि ज्ञान के तीन भेद हैं। देशावधि, परमावधि तथा सर्वावधि। देशावधि दिशा तथा काल से सीमाबद्ध है, परमावधि असीम है, सर्वावधि से विश्व के समस्त रूपी द्रव्यों का अनुभव हो सकता है।

मन. पर्यय

दूसरे की चित्तवृत्ति के विषय के अनुभव का नाम मन पर्ययज्ञान। पाश्चात्य विज्ञान में इसको टेलीपथी अथवा mind reading ऐसी संज्ञा देने में आई है। मन पर्यय ज्ञान के ऋजुमति तथा विपुलमति दो भेद हैं। ऋजुमति संकीर्ण ज्ञान है। विपुलमति की सहायता से विश्व के समस्त चित्त सम्बन्धी विषयों का सूक्ष्म अवलोकन हो सकता है।

केवल ज्ञान

चैतन्यवाले जीवों के ज्ञान की यह बिल्कुल अन्तिम मर्यादा है। विश्व के सभी विषयों का केवल ज्ञान में समावेश हो जाता है। केवलज्ञानी अर्थात् सर्वज्ञता। केवलज्ञान आत्मा में

से ही प्रगट होता है। और इन्द्रिय की तथा दूसरी किसी वस्तु की सहायता की आवश्यकता नहीं पडती।

केवल ज्ञान मुक्ति प्राप्त किये अथवा मुक्त पुरुष होते हैं। केवल ज्ञान के साथ ही यहाँ अपने को, जैन दर्शन के कहे सात तत्वों का स्मरण आता है। जैन दर्शन ने निरूपण किये इन सात तत्वों का नाम इस प्रकार है —जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर निर्जरा तथा मोक्ष।

जीव, अजीव

जैन दर्शन के अनुसार जीव चेतनादि गुण विशिष्ट है। स्वभाव से शुद्ध ऐसा जीव अनादि काल से अजीव तत्व से लिपटा हुआ है। इस अजीव तत्व से छुटकारा पाने का नाम मुक्ति है।

आश्रव

स्वभाव से शुद्ध ऐसा जीव जब राग द्वेष करता है तब जीव में विषय में कर्म-पुद्गल आश्रव पाता है—प्रवेश करता है। आश्रव दो प्रकार के होते हैं। शुभ तथा अशुभ। शुभ आश्रव के कारण जीव स्वर्गादि सुख का अधिकारी बनता है तथा अशुभ आश्रव के कारण इसको नरकादि यातनाएँ सहन करनी पडती हैं। आश्रव काल से जो कर्म-पुद्गल जीव में प्रवेश करते हैं उसकी प्रकृति आठ प्रकार की है। ज्ञानावरणीयकर्म, दर्शनावरणीय कर्म, मोहनीय कर्म, वेदनीय कर्म, आयु कर्म, नाम कर्म, गोत्र कर्म तथा अन्तराय कर्म।

जो कर्म ज्ञान को ढक कर रखता है उसका नाम ज्ञानावरणीय। जिस कर्म के कारण जीव का स्वाभाविक दर्शन-गुण ढका हुआ रहे उसका नाम दर्शनावरणीय जो कर्म जीव के सम्यक्त्व तथा चारित्र गुण का घात करे, जीव को अश्रद्धा तथा लोभादि में फसा मारे उसका नाम मोहनीय कर्म, वेदनीय कर्म के परिणाम से जीव को सुख दु:ख रूप सामग्री मिले। आयु कर्म के प्रताप से मनुष्यादि का आयुष प्राप्त करे।

जीव की गति, जाति, शरीर, आदि के साथ मे नाम कर्म का सम्बन्ध रहता है। उच्च-नीच गोत्र पाने का आधार गोत्र कर्म पर है। अतराय कर्म के कारण दानादि सत्कार्य के विषय में भी विघ्न आता है। इन आठ कर्मों के विषय मे भी विघ्न आता है। इन आठ कर्मों के दूसरे अनेक भेद हैं। अति विस्तार के भय से यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया।

बंध

स्वभाव से मुक्त ऐसा जीव, उपर कथानुसार कर्म-पुद्गल के आश्रय से ही बधा हुआ रहता है। अजीव कर्म पुद्गल के साथ मे जीव के मिल जाने का नाम बंध।

संवर

संसार के मोह मे फसे हुए जीव मे कर्म का आश्रव जिससे रुक जाय उसका नाम संवर। संवर, बंधे हुए जीव को मुक्ति मार्ग की ओर ले जाता है। जैन शास्त्रो मे वर्णन की गई तीन गुप्ति

परिसह का जय, पाच प्रकार के चारित्र तथा बारह प्रकार के तप से सवर साधा जा सकता है। इन सर्व के लक्षणों के वर्णन का यह स्थान नहीं।

निर्जरा

कर्म के एक देशीय क्षय का नाम निर्जरा, सविपाक तथा अविपाक निर्जरा के दो भेद हैं। निर्दिष्ट फल भोग के बाद कर्म का जो स्वाभाविक क्षय हो उसका नाम सविपाक निर्जरा तथा फल भोग के पहले ध्यानादि साधन से जो कर्म क्षय पावे उसका नाम अविपाक निर्जरा।

मोक्ष

जीव के सब कर्म क्षय जावे अर्थात् वह मोक्ष गति को प्राप्त करे—स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त करे। जैन शास्त्र में मोक्ष मार्ग के चौदह पगथीये वर्णन किये गये हैं। यहां तो इनका केवल नाम बताकर ही संतोष मानता हू।

(१) मिथ्यात्व (२) सास्वादन (३) मिश्र (४) अविरत सम्यक्त्व (५) देशविरत (६) प्रमत्त विरत (७) अप्रमत्त विरत (८) अपूर्व करण (९) अनिवृत्ति करण (१०) सूक्ष्म सपराय (११) उपशांत मोह (१२) क्षीण मोह (१३) सयोगकेवली (१४) अयोग केवली। इन सर्व का विवेचन छोड देता हू।

मोक्ष मार्ग

जैनाचार्य, सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र को, एक ही साथ तीनों को, मोक्ष मार्ग का प्रापक—मोक्षक मार्ग में

ले जाने वाला कहते हैं। इनको त्रिरत्न अथवा रत्नत्रय के नाम से वर्णन करते हैं।

सम्यक् दर्शन

जीव अजीव आदि पूर्वोक्त तत्वों का जो विवरण किया उसके विषय में अचल श्रद्धा का नाम सम्यग् दर्शन।

सम्यग् ज्ञान

संशय, विपर्यय तथा अनध्यवसाय नाम के तीन प्रकार के समारोप अथवा तीन प्रकार की भ्रांतियां हैं। यह समारोप-वर्जितभ्रांति बिना के ज्ञान का नाम सम्यग् ज्ञान।

सम्यक् चारित्र

राग द्वेश रहित आचरणों के अनुष्ठान का नाम सम्यक्-चारित्र।

उपसंहार

जैन विज्ञान की बात कहते, यहाँ अन्य अनेक बातों का अवतरण करना चाहिए, परन्तु श्रोताओं को या वाचकों को अरूचि न होवे इसलिए मैंने हो सके उतना संक्षिप्त में ही कर दिया है। बाकी तो जैन्य काव्य, जैन कथा, जैन्य साहित्य, जैन नीति ग्रन्थ' जैन ज्योतिष, जैन चिकित्सा शास्त्र आदि में इतना विशाल वर्णन है, इतने सिद्धांत तथा इतने ऐतिहासिक उपकरण हैं कि योग्य विवेचन बिना सामान्य लोक समूह उसको समझ नहीं सकता। मैंने जिस जैन विज्ञान की रूप रेखा यहाँ पर

चित्रित की है वह तो अति सक्षिप्त है। जैन दर्शन की केवल स्थूल रेखा ही है अन इसके अतिरिक्त प्रमा-णाभास क्या है? वाद विचार कैसा हो? फल परीक्षा की पद्धति कैसी हो? ऐसी ऐसी अनेक बातें जैन दर्शन मे है। मैंने यहा स्पर्श जैसा भी नहीं किया, फिर भी मुझे विश्वास है कि इतने सक्षिप्त विवेचन पर से सुज्ञमहानुभाव इतना तो अवश्य देख सकेंगे कि वर्तमान युग मे विज्ञान सम्बन्धी अधिकतर मूल सूत्र जैन विज्ञान में है।

जैन विद्या भारतवर्ष की विद्या है। इस विद्या का पुनरुद्धार करने की जवाबदारी भारतवर्ष पर है। भारत वर्ष की लुप्त विद्या तथा सभ्यता का पुनरुद्धार करने मे बगाल ने सदैव अग्र भाग लिया है। बगाल में आज तक अति प्रचीन जैन प्रतिमाएँ मिल रही हैं। बगाल मे ही "सराक" नाम की एक अहिंसा प्रिय जाति निवास करती दृष्टिगोचर हुई है। आज तो यह जाति हिन्दू समाज मे समा गई है तो भी यह प्राचीन जैन समाज-श्रावक समाज की उत्तराधिकारी है, इस विषय मे किंचितमात्र भी शका नहीं। इनके आचार इनकी लोक कथा तथा सस्कार उपर से यह सिद्धान्त मजबूत बनता है।

ऐसा भी एक अनुमान निकलता है कि बगाल में जिसको आज वर्द्दमान—वर्धमान कहा जाता है वह जैन सम्प्रदाय के अतिम चौवीशवे तीर्थंकर, श्री वर्द्धमान स्वामी की स्मृति के साथ सम्बन्धित है। इमावीर स्वामी के नाम के प्रताप से बगाल की भूमि मे वीर भूमि (वीरभूम जिला) नाम अंकित

हुआ हो यह भी स्वाभाविक है। बंगाल में जैन प्रतिमाओं के सिवाय किसी किसी स्थान पर प्राचीन जैन मन्दिर भी मिलते हैं। बंगाल के समीप मगध में जैन सम्प्रदाय के अनेक महापुरुषों ने विचरण कर अहिंसा एवं अनेकांत का जय घोष किया है। यह सब देखते, सभ्यताभिमानी बंगाली जैन शिक्षा के पुनरुद्धार में पूरी दिलचस्पि न ले तो इनके लिए यह एक आक्षेप का विषय कहा जाय।

दूसरी भी एक बात यहाँ कह देता हूँ कि अहिंसा के प्रताप से भारतवर्ष का उद्धार होना चाहिये। ऐसा महात्मा गांधी जी की ओर से अपने का कहा जाता है। सर्व प्रथम बंगाल ने ही राजनैतिक अहिंसा आचरण कर बताई थी। यह अहिंसा मूल कहाँ से आई ? जैन शासित धर्म में अहिंसा की बात है इस बात का मैं इनकार नहीं करता। बौद्धोंने भी अहिंसा को अपने धर्म का आधार रूप माना है। परन्तु भारतवर्ष का जैन समाज दूसरों की भांति अहिंसा धर्म का गीत गाकर ही नहीं बैठता।परन्तु मन, वचन, काया से इस धर्म का पालन भी करता है। दूसरे प्रकार से जैन भले ही पिछड़ गये हो तो भी इनकी अहिंसा की आराधना-भक्ति प्रशंसनीय है। जैन विद्या के पुनरुद्धार में बंगाल के विद्वान भाई बहन यथा शक्ति तैयार रहे तो भारतवर्ष की सभ्यता दीप उठे यह बात दुबारा कह कर निबन्ध समाप्त करता हूँ।
